Samvit Sphulinga

BULLETIN OF SAMVIT SADHANAYANA

FOR PRIVTE CIRCULATION
TO SADHAKAS ONLY

JULY 19

PRINTED MATTER

To _____

_____

_____

From

SANTSAROVAR,
Mount Abu (Raj.)

Rajasthan Printers, Jodhpur.

संवित्
स्फुलिंग

संवित् साधनायन का विमर्श–पत्र

२.

२

वैयक्तिक प्रसारणार्थ
सन्तसरोवर, आबू पर्वत

शरद् करण
विक्रम २०३२

अग्निमीले—

क्षुधा–अर्चन अन्न से
गौ–पूजन घास से–
अनल–स्तवन कैसे ?
आज्य-आहुति धारा से।
आत्म–आराधन कैसे ?
चिन्मय जीवन धारा से।

अग्नि से निर्मित वनस्पति, वनस्पति से स्नेहरस, रस से
परिवृद्ध अग्नि शिखा—
आत्मा में विवर्त प्रपंचविषय, विषय सन्निधि में चित्तवृत्ति,
वृत्ति में प्रबुद्ध आत्म ज्योति !—
इस जीवन चक्र–गति का संचालन–सूत्र संवित् है ।
वही मूलाग्नि, वही कालाग्नि ।
वही विश्वान्न, वही संवृत्ति–मन ।
जड़–चेतन भेदों को एक दूसरे से उत्पन्न कर,
अपने में ग्रसित करती रहती है—संविदग्नि
उस का हम सतत सरस अनुसन्धान करें ।
उसी में तन्मय होते रहें—
वह्निमय स्फुलिंगवत् ।।

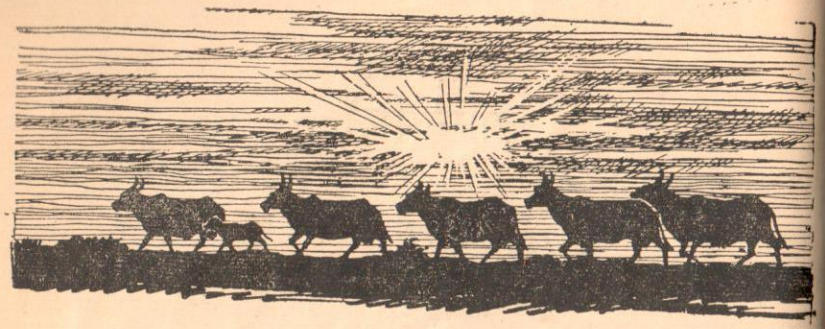

अरुणा

आलोक विकीर्ण होता है तो उसका विकासक्रम गहरी नीलिमा से गह[र]
लालिमा तक बनता है। अनुदित प्रकाश ही अन्धकार कहलाता है। अर्था[त्]
प्रकाश का बीज, तम है। पूर्ण उदित प्रकाश को राग कहते है। अर्थात् प्रका[श]
की पूर्णता अरुणिमा है। यही विमर्श है।

श्याम अस्त का, लय का, अव्यक्त का रंग है। लोहित उदय का विका[स]
का अभिव्यक्ति का रंग है।

जगत आवृत होता है उससे, निरावृत होता है इससे। ब्रह्ममुहूर्त में तत्त्[व]
का पूर्ण प्रकटन है। पश्चात अरुणोदय के ऊपर अन्य रंग चढ़ते जाते हैं, तत्त्[व]
ढकता जाता है। पूर्णतया ढक जाने पर निशा है। फिर रंग धुलने लगते हैं
पूर्णतया धुल जाने पर पुनः प्रभात।

★

"निजारुणप्रभापूरमज्जद्ब्रह्माण्डमण्डला"

संवित् देवी के अरुण प्रभा प्रवाह में सारा ब्रह्माण्ड मण्डल निमज्जित है
उसके राग में विश्व रंजित है, आन्दोलित है। वह राग क्या? सब तत्त्वों [में]
ओतप्रोत वह कौनसा रस? किसके स्पन्द से सारा विश्व उछल रहा है?

स्व का आस्वादनजन्य आह्लाद।
स्व परामर्श का प्रमत्त कौतूहल ॥

दर्पण दृश्यमान नगरी

श्रौत साधक जगत को ब्रह्मविग्रह मानकर उसकी उपासना करता है:

अग्निर् मूर्धा चक्षुषीचन्द्र सूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमय, पद्भ्यां पृथिवो ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥

इसमें जगत एक महिमा हो जातो है और ब्रह्म बन जाते हैं सर्वभूतान्तरात्मा।
[illegible] भाव के ग्रहण का यह सरस प्रकार है। इस अभ्यास की प्रौढ़ता में,
[illegible] एक सूक्ष्मता सम्पन्न होती है। जिसको लेकर साधक कवि बन जाता है।
[illegible] वह जगत का कुछ और ही दर्शन करने लगता है:

"अव्यक्त सत् को जब अपना व्यक्त रूप देखने की इच्छा हुई तो वह जगत
[illegible] में प्रतिबिंबित हो उठा।"

★

'प्रतिबिंबित' क्यों?

क्योंकि सारे दृश्य का केवल दर्शन मात्र में तात्पर्य है, सत्यता में नहीं,
[illegible] से व्यवहित या पूर्वोवस्थित होने में नहीं। जैसे प्रतिबिंब बिंब से पृथक
होकर उपस्थित नहीं होता, पृथक दिखाई भर अवश्य देता है।

पर जगत किसमें प्रतिबिंबित है? 'मन में' नहीं कहना, क्योंकि वह स्वयं
प्रतिबिंबित है। 'माया में' यह भी ठीक नहों। क्योंकि माया तो प्रतिबिंबन
शक्ति है।

तो दर्पण कौन? इसका उत्तर तभी मिलेगा, जब समझेंगे कि देखने
वाला कौन? *देखनेवाला स्वयं दर्पण और दृश्य बनता है*

आत्मन्येवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति

प्रावृषि

गगन में काले रसीले जलद छाए। तड़ित चमकी। गर्जना हुई। प्रथ शीतल फुहार का धरती की अपनी गन्ध ने स्वागत किया। वनस्थली गदरा गई प्राणियों में आह्लाद अँकुराया।

मैं भी अपना द्वार खोलूँ। खुले में खुलकर चुपचाप बैठूँ और जीभ भीग कर उससे बात करूँ—

ओ! करुणामय, उमड़ घुमड़ कर मुझ में एक अथाह गम्भीरता भ देना, मुझे मेरी पूरी, गहराई तक उतर कर छूते जाना, कि प्यास सदा के लि बुझ जाय। ओ! चपला, एक शाश्वत कौंध बन कर बस एक बार मेरे अन्त में बस जाना।

पावस मुझ पर पूर्णता से बरसना कि तन मन पावन हो जाये।

★

प्रशान्त गगन का मौन रिमझिमा रहा है, अचल, अखण्ड बूँद-बूँद बन नर्तन कर रहा है—मैं इस समरस के संगीत में घुलता जा रहा हूँ। असीम समीप सिमटता जा रहा है। अन्तस में एक आकाश उन्मुक्त हो गया है और उस एक सूरज भरे हुए है। शब्दहीन, स्पन्दन रहित सुधावर्षण प्रारम्भ हो गया है।

बाहर भी वर्षा अन्दर भी वर्षा

मैं वर्षा ।।

महानिशा

संवित् गगन-वक्ष में
बढ़ी घटा सी स्वच्छाया।
अस्तदिवाक्रोश से
बंह ब्रह्म रो पड़ा।

उर में उद्दीप्त क्षुधा—
सप्त पर्व सोम सुधा।
मुक्त सर्वालम्ब मन
नभ में कूद पड़ा।

अमृत बना भवानल
मन अमन अचञ्चल।
सुप्त हुआ रज-पवन
पुरुष जाग पड़ा।

★ ★ ★

साधना-सूत्र

साधना जीवन का एक आधारभूत तत्त्व है। प्रत्येक परिस्थिति में जिस साध्य के लिये मनुष्य साधक बनता है, उस साध्य तक उसको ले जाने वाले साधन के साथ साधक की तन्मयता ही साधना है। अधिकार के उन्नत उन्नततर स्तरों में यह तादात्म्य शक्ति सूक्ष्म सूक्ष्मतर होती जाती है। स्थूलतम से सूक्ष्मतम जीवन के सभी स्तरों को संगृहीत करें तो यह साधना सूत्र संवित् सिद्ध होगा।

दृष्टान्त के लिये—क्षुधित के लिये भोजन साध्य है । उसका साधन अन्न, अनल, काष्ठ आदि । पाकक्रिया-प्रवीणता की साधक में अपेक्षा जिससे वह उस साधन को अपना सके । दूसरे स्तर में भोजन स्वयं साधन जिससे सशक्त शरीर सिद्ध होता है । पर इसके लिये भोजनकर्त्ता को व्याया आदि द्वारा तीव्र जठराग्नि वाला अधिकारी बनना पड़ेगा । आगे के स्तर शरीर स्वयं कर्म का साधन बन जाएगा । इसके लिये देहाभिमानी को व विधान करने वाले शास्त्रों के प्रति श्रद्धावान होना पड़ेगा । इससे भी उच्च जीवन स्तर में जाना हो तो शास्त्रीय कर्म को भी साधन बना कर ईश्व आराधना की सिद्धि में विनियुक्त करना होगा । इस स्तर में मानव ईश्वर तत्परायण होता है । तत्परता को ईश्वर के साथ एक होने की अनुभूत्ति परिणित करने के लिये साधक को पराभक्ति से सम्पन्न होना होगा ।

इस प्रकार साधक को प्रत्येक स्थिति में खोज कर उस साधन प्रक्रिय को अपनाना चाहिये जिससे उस साध्य की सिद्धि को लेकर ईश्वर प्राप्ति त अपनी साधन सम्पत्ति को बढ़ाता चल सके ।

संवित् साधना में पाकशास्त्र—प्रवीणता से लेकर पराभक्ति तक ये सभ एक सूत्र होते हैं ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविशेषेच्छत गं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।

साधना निश्चित, शुष्क क्रिया मात्र नहीं अपितु जीवन का क्रमिक विकास है, जीने की कुशलता है, सर्वोन्नत कला है शाश्वत-जीवन के सूत्रों का पुष्पवत चयन है ।

Autumnal Fill – a meditation:

A Lake deep set in the hills—
Tall trees and taller peaks surrounding,
Their green gaining a deeper sheen
In the depths of the glossy waters.

A water-insect at incredible speed
Streaks across the still surface.
Another, yet another . . .
A hundred living forms of thought
Rise and dissolve in the green-greyishness
Every shimmering moment.

A Lake brimming to its full-being—
With hidden teeth of rugged rocks
That show only in the grimace of drought;
With shoals of finned-feelings
Roving feetless, staring lidless
Into measureless liquid space.

A fitful wind sweeping over
From distant horizons of past
Makes the waters to shiver
And break into patches of white.
The trees move, the hills move
All is one moving mass.

And then it is still again.
It is full again.
It is the same waters inviolate,
The waters of Samvit.

The Flower

Very often God is pictured as holding a single flower or a bunch of flowers gently in the hand — be it Tripurasundari, Dakshinamurti, Lakshmi, Vishnu or Buddha.

This instantly suggests the concept of God arising o of the causality of world. The flower expresses the richne and fragrance of earth, sweetness of water and all the brigh hues of fire—the three elements that have nurtured the worl coaxed it to sprout from the seed in the primordial mire t the bloom of beauty above the waters. Through its suppl grace and spreading petalled-glory, the flower speaks fo wind and space, her patrons.

The world is a bloom of five elements.
But who holds it ? Meditate.

Child-hood, youth, old age—see the logical order of it and the beauty of the soul will shine forth.

★

Enjoyment

It is easy to take to a free life of unrestrained sense-pleasures. But, a little discrimination is enough to show, it is not profitable even from the worldly view-point. Apart from having to pay for it all the time with a great amount of suffering, suspense and self-degenerating compromises, if one succeeds in fulfilling one's desires, yet there remains the inexorable fact that in the ultimate analysis— at the fag end of life—one is convinced of having his best energies spent on mere trifles, his truest affections showered on persons he could never have possessed; he had been merely blowing soap-bubbles in the sun which is stooping suddenly to set.

Therefore an intelligent person exercises his discrimination in the initial stages of sadhana to live rightly, sharing the subtle joys of life instead of going after the gross. But the question arises, what is gross and what is subtle in enjoyment ? Is eating an ice-cream cone gross and hearing to sweet music subtle ? There are people who devour cinema songs more sensually than a dog lapping his daily diet. It is true that the object of enjoyment matters much in the slow shaping of the enjoyer's character. But, all the same, the nature of enjoyment has to be assessed shrewdly by something more than the mere grossness or subtlity of the object, something intrinsic to the person, pertaining to the state of his very being. It may be put simply in this way :

Any enjoyment will yield happiness only if the desire for it is lesser than the sensual effect of the enjoyment. Suppose the nature of an enjoyment is such that, in the very process of its materialisation, it causes the prompting desire to increase tenfold, thus making the resultant happiness fractional, then such an enjoyment is to be considered

gross. On the contrary if the happiness shows an upw gradient as the experience of enjoyment proceeds to fu ment, it is subtle. In this case the nature of enjoyment co ributes to dissolution of desire and not its shooting up.

Thus the subtlest pleasures are those in which des is almost nil. The *akaamahata* (unslain by desire), says t Upanishad, enjoys maximum ananda at every stage a situation of life and in every sense— aesthetic, psychic a intellectual.

Carefully designed restraint on desire is the watch-wo for elevated life of happiness.

★

Joy is not a thing; you cannot buy it with your money God is not a concept; you cannot catch Him in the net words and thoughts. So cease this grabbing and hoarding give up this gift of the gab.

Feel inwardly for joy and for God. Perhaps both ar the same, or they are the twin faces of the coin of life Realise its worth in the endless expanse of the spirit, in the mysterious rising and fall of perceptions.

cooks a distinct delicious flavour of life
called vairagya;
tastes in everything the taste of his tongue
called bhakti;
takes each incident as ticking of the clock
called consciousness;
sees a tree as a tree sees a tree
called life;
arranges carefully the altar—fire's faggot
called body;
allows senses to stream as rays of the sun
called Samvit.

The path chooses you and not you the path. You open yourself out and begin to place the first steps–and the path will open itself and lead you within.

You become the path; the path will become your perfection.

★

Consciousness contacting matter
gives rise to knowledge;
Consciousness contacting consciousness
manifests as love.

★

Shadows spring to life
When light stretches to feel itself.
Life itself is a Shadow, shapeless and shifting,
Cast into existence by Self's stretching
To feel Its own radiance.

✱

Of the Ayana :

Gurupoornima was celebrated in "Anandalahari" Santasarovar, Mount Abu on the 23rd. July. It began w prayer meeting early in the morning. Sri Swamiji explain how that exalted state of consciousness called Guru works eliminate the spiritual poison called moha. The discou was followed by Vyasa–pooja in which all the Chief Mast of advaita–tradition, from Sri Dakshinamurti to those of o generation, were invoked and worshipped on a specia designed and consecrated altar.

All the participating sadhakas were taken to t ancient temple of the Advaita–Guru, Sage Vasishtha. Af Guru–kirtana in the evening Sri Swamiji spoke in detail the three catagories of Guru and the significance of gur saparya. "Complete surrender of the probing intellect the revealing light of the Master, as illustrated in the relatio ship of Arjuna to Sri Krishna—so subtly worked out in Ma abharata and taken to its culminating fulness in the Gita— the essence of guru–pooja and the immediate cause of illum nation. The eternal light of Guru is coming in a tremendou flood, reviving itself in each generation, strengthened by an strengthening in its turn the spiritual tradition. Let u stick firmly to that form of it which we have inherited fro

glorious Bhagawan Bhashyakara. Let us be proud of ing all difficulties external and of accepting all sacrifices ternal in proving our worth as children of this tradition. his is our offering and prayer today".

The Santasarovar was full to the brim and so were our earts. The down–pour had transformed the starving ill side around into sumptuous beauty. Even so, may the uru's touch bring fulness within. ॐ

✱

elebrations to come :

October	Navaratri begins
October	Saraswati pooja
	Mahanisha
October	Vijaya–dashami
October	Sharat–poornima
November	Deepotsava
November	Kartika–poornima
	Chaturmasa ends.